

पाठ्य विषयों की संरचना: अर्थ एवं महत्व

□ जोसफ जे. स्कॉब

अनुवाद - संतोष शर्मा

इतिहास ने, विभिन्न ज्ञान संग्रहों एवं खोज विषयों को कायम रखने के आधार के रूप में माने गये प्रतिभासों के बीच अंतर की प्रकृति में बहुत से भेद देखे हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रतिभासों में यथार्थ रूप से कोई अंतर नहीं है। लेकिन, इसका तात्पर्य यह जरूर है कि शिक्षा द्वारा पाठ्य विषयों के ढांचों को स्पष्ट तौर पर विद्यार्थियों के सामने रखा जाना चाहिए ताकि वे विषयों की क्षमताओं, कमियों और संभावित विकल्पों को पहचानने में सक्षम बनें। स्कॉब समस्याओं के उन तीन समूहों की समीक्षा करते हैं जो पाठ्य विषयों की संरचना के सवाल में अन्तर्निहित हैं। पाठ्य विषयों की व्यवस्था (कितने पाठ्य विषय हैं व एक दूसरे से कैसे संबंधित हैं); प्रत्येक पाठ्य विषय का सारांश (उनकी सैद्धांतिक संरचना); एवं खोज की विधियां तथा प्रामाणिकता के मापदण्ड।

हम यहां एक बहुत ही कठिन भू भाग की खोज आरंभ करते हैं; मनुष्य के ज्ञान की प्रकृति, विविधता व विस्तार के योगदान का निर्धारण। इस कार्य में मेरा दायित्व बहुत ही खास एवं प्राथमिक है। वह है क्षेत्र का मात्र नक्शा तैयार करना।

पाठ्य विषयों की संरचना से क्या तात्पर्य है : इसके तीन प्रकार के अर्थ हैं, तीन भिन्न परन्तु संबंधित समस्याओं के समूह। नामकरण द्वारा भेद न कर हम इन तीनों का एक साथ पुर्वावलोकन करते हैं।

व्यापक तौर पर यह स्वीकार किया गया है कि मूलतः प्रतिभासों के भिन्न संप्रदायों की पहचान करने के लिए सुनिश्चित आधार हैं, और इनके (प्रतिभासों) स्वभाव में भिन्नताएँ होने के वजह से इनके अन्वेषण के लिए पृथक नियमावलियों की आवश्यकता है।

इस प्रकार की धारणा पर आधारित विभिन्न प्रकार के मत हैं। उदाहरणस्वरूप, अनेक दार्शनिकों ने सजीव एवं निर्जीव प्रतिभासों के बीच मौलिक भेद पर जोर देते हुए इस धारणा को जन्म दिया कि जैविक विज्ञान एवं भौतिक-रासायनिक विज्ञान मूल रूप से दो भिन्न विज्ञान हैं। यह दोनों विज्ञान अपनी पद्धति में, मार्गदर्शक धारणाओं में, उत्पन्न ज्ञान की किस्मों में, एवं निश्चितता की मात्रा में, ठीक उतने ही भिन्न माने गये हैं जितनी उनकी विषय सामग्री।

मनुष्य और प्रकृति के बीच अन्तर के कारण उत्पन्न एक दृष्टिकोण ऐसा भी है, जिसमें कल्पना की गई है कि प्रकृति कुछ अटल नियमों से बाध्य है जबकि मनुष्य कुछ मामलों में एवं कुछ सीमा तक स्वतंत्र है। इस धारणा के अनुसार खोज के दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों को अलग किया गया है : एक तरफ विज्ञान है, जो उन अटल

नियमों से ताल्लुक रखता है जिनका प्रकृति संभाव्यतः पालन करती है; दूसरी तरफ नीतिशास्त्र एवं राजनीति के सदृश्य एक विषय, जो मनुष्यों की निर्णय लेने की स्वतंत्रता और उनके निर्णय लेने के तरीकों का अध्ययन करता है।

प्राकृतिक प्रतिभासों की सामान्यता (यानि उनकी पूर्वानुमानियता, प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा बारम्बार एक समान रहने या व्यवहार करने की प्रवृत्ति) और मानविक घटनाक्रमों की विशिष्टता (यानि मनुष्य के व्यवहार की गतिविधियों के मूलतः अनोखे एवं आवृत्तिहीन स्वभाव) की व्यापक असमानता पर जोर देने वाला एक दृष्टिकोण और भी है। इधर भी, खोज एवं अध्ययन की दो बहुत ही भिन्न विषयवस्तु उभरी है: एक तरफ विज्ञान एवं दूसरी तरफ इतिहास। इस मतानुसार, विज्ञान उन सामान्य नियमों को खोजता है जो प्राकृतिक वस्तुओं के आवृत्तिशील व्यवहार को वर्णित करते हैं, जबकि इतिहास उन सूक्ष्म और अप्रतिम घटनाक्रमों को निर्धारित करने का प्रयत्न करता है, जो उसके द्वारा अध्ययन किये गये हर एक जीवन, हर युग, प्रत्येक सभ्यता या संस्कार को चित्रित करते थे। इस प्रकार, मौलिक रूप से भिन्न दो प्रकार के पाठ्य विषय उभरते हैं, जो अपने घटकों, पद्धतियों, सिद्धांतों और प्रासंगिकता में अलग हैं।

अन्य विषयों में भी, खासकर गणित और तर्कशास्त्र का भी इसी प्रकार विभाजन हुआ है। बहुत समय पहले गणित को विज्ञान समेत सभी विषयों से भिन्न माना जाता था, क्योंकि उसकी विषयवस्तु का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं था। भौतिक एवं जैविक खोज की वस्तुएं देखी जा सकती थी, स्पर्श की जा सकती थीं एवं चखी जा

सकती थीं। जबकि गणित की वस्तुओं के विषय में यह संभव नहीं था। समतल, रेखा, बिन्दु, इकाई संख्या आदि किसी अभौतिक रूप में विद्यमान थे या बिल्कुल ही नहीं थे। गणितीय विषयों की यह विशेषता अभी भी एक उलझन है। गणित के स्वभाव के बारे में कोई एक विचार विकसित नहीं हुआ है जो सभी संबंधित विद्वानों को संतुष्ट कर सके, हालांकि अधिकतर विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि गणित अन्य शास्त्रों से आत्यंतिक रूप से भिन्न है।

तर्कशास्त्र को एक विशेष दर्जा इसकी विषयवस्तु की विशिष्टता के कारण नहीं बल्कि अन्य विषयों से इसके अनूठे संबंध की वजह से दिया गया है। मूलरूप से, तर्कशास्त्र द्वारा विकसित युक्ति एवं प्रमाण के मापदण्डों को प्रयोग में लाते हुए सभी अन्य शास्त्र किसी हद तक अपने निष्कर्षों की विश्वसनीयता को परखते हैं। चूंकि, इन मापदण्डों के विकास के लिए तर्कशास्त्र ही उत्तरदायी है, वह अपने निजी निष्कर्षों की जांच के लिए इन्हें प्रयोग में नहीं ला सकता। ऐसे, तर्कशास्त्र एक प्रकार से सभी “शास्त्रों की रानी” के रूप में उनके नियमों को निर्धारित करता है एवं अपने लिए कुछ भिन्न एवं रहस्यमय नियमों का पालन करता है। गणित के मामले के विपरीत, तर्कशास्त्र की यह विशिष्टता वर्तमान में सर्वमान्य नहीं है।

उदाहरणस्वरूप, कुछ पक्षों द्वारा यह माना जाता है कि तर्कशास्त्र, अन्य शास्त्रों द्वारा विकसित, प्रयोग में लाई गई, और प्रभावशील पाई गई युक्ति एवं प्रमाण की पद्धतियों एवं नियमों को मात्र सूत्रबद्ध करता है। इस मतानुसार तर्कशास्त्र अन्य शास्त्रों की रानी उतना नहीं जितना उनकी दासी है।

उपरोक्त भिन्नताओं की एक विशिष्टता का उल्लेख करते हुए हम विषयों की सरंचना की समस्या का यह पूर्वावलोकन जारी रखते हैं। विशिष्टता यह है कि विषयों को पृथक करने के आधारों के रूप में, प्रतिभासों की विविधता जो इतिहास के किसी एक युग में तीव्र और स्वतः प्रमाणित नजर आती हैं, कालांतर में या तो गायब हो जाती हैं या अप्रासंगिक हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, जीव विज्ञान एवं भौतिक-रसायन विज्ञानों के बीच फर्क को ही लीजिए। पुराने समयों में एवं पूरी अठ्ठाहरी सदी के दौरान सजीव एवं निर्जीव के बीच फर्क को टाल नहीं सकते थे। सजीव वस्तु “स्वःचालित” थी; अन्य कोई वस्तु ऐसी नहीं थी। जीवित वस्तु

प्रजनन करती थी, विकसित होती थी और उसका अपना एक व्यक्तिगत इतिहास था जिसे कोई निर्जीव वस्तु दोहरा नहीं सकती थी। तब उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान इनमें से कुछ भिन्नताएं महत्वपूर्ण नहीं रही एवं अन्य मनुष्य की पहचान के दायरे से पूर्णरूप से अदृश्य हो गई। इस बदले हुए माहौल में, भौतिकशास्त्री क्लॉड शबरनार्ड ने, जीवित वस्तुओं का अध्ययन मात्र भौतिकी और रसायनशास्त्र के संबंध में करने की वकालत की। तब से जीवित वस्तुओं के प्रति इस प्रकार का एक दृष्टिकोण इतना फलदायी रहा

है कि हम बेहिचक यह कह सकते हैं कि प्रयोगशाला में जीवित अणुओं का संश्लेषण होने में अब ज्यादा देर नहीं है। हाल के समय में इस दृष्टिकोण में और बदलाव आया है: कई भौतिकी विशेषज्ञों का मत है कि कुछ भौतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन ठीक उसी प्रकार किया जाए जैसे बरनार्ड के आने के पहले जीवित वस्तुओं का होता था।

इसी प्रकार का एक बदलाव, कुछ कम मात्रा में, यंत्र-विज्ञान में भी दृष्टिकोचर है। तीन सौ वर्ष पूर्व, गतिशील खगोलीय पिण्डों (ग्रह एवं तारे) एवं गतिशील भूगोलीय पिण्डों (पृथ्वीतल पर लुढ़कती हुई वस्तु और वायु में फेंकी गई या नोदित की गई वस्तु) के व्यवहार में बहुत फर्क

नजर आता था। भूगोलीय वस्तु अनिवार्य रूप से धरती पर गिरकर ठहर जाती थी, और खगोलीय वस्तु बिना रूके अपनी नियमित गति से चलती रहती थी। न्यूटन के आगमन के बाद वही भिन्नताएं हालांकि तब भी साक्षात् थी, बिल्कुल नगण्य हो गई।

संक्षेप में, हम जो कुछ पदार्थों में देखते हैं और उनके बारे में सीखते हैं वह समय के अनुसार बदलता रहता है। भिन्नताएं जो एक समय में अति तीव्र दिखाई देती हैं, वे बाद में भ्रामक या नगण्य लगने लगती हैं; और इनमें से कुछ बाद में नए रूप में पुनः उभर कर आती हैं। वस्तुगत तरीके से मालूम किये गये ज्ञान में इस प्रकार परिवर्तन किस कारण से हो जाता है? इसका जवाब हम काफी सहजता से सोदाहरण यंत्र-विज्ञान के मामले में देख सकते हैं, जहां खगोलीय एवं भूगोलीय में भिन्नता को एक समय अत्यंत तीव्र माना जाता था और अभी वर्तमान में भ्रामक समझा जाता है।

माना कि वह भिन्नता एक भ्रम था, पर वह भ्रम टूटा कैसे? इसका उत्तर यही है: न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नामक एक सिद्धांत को

शिक्षा के लिए इस समस्या का या कम से कम इसके एक हिस्से का महत्व तो काफी प्रत्यक्ष है। क्योंकि किसी ज्ञान के संग्रह के मूल में क्या ढांचा है, यह समझने से हम यह भी जान जाते हैं कि उस ज्ञान के प्रसार में क्या कठिनाइयां आ सकती हैं। पदार्थों की दो श्रेणियों को किसी एक मापदण्ड जैसे रूप या रंग द्वारा पृथक करने में जो जटिलता है, हो सकता है सैद्धांतिक ढांचा उससे ज्यादा जटिल नहीं हो। उस परिस्थिति में हम मान सकते हैं कि छोटे बच्चों को भी यह ज्ञान प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

जन्म दिया । इस सिद्धांत के आलोक में, खगोलीय वस्तुओं की गति का नये तरीके से निरीक्षण करना वांछनीय एवं संभव हुआ । खासकर चांद की बदलती दिशाओं एवं गति को इस प्रकार नापना वांछनीय और संभव हो गया जिससे ऐसा कहा जा सकता है कि चांद लगातार धरती की ओर गिर रहा है और साथ ही में अपने पतन की दिशा में एक कोण बनाते हुए लगातार एक सीधी रेखा में चल रहा है । इस प्रकार, पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा के इस परिक्रमा-पथ को इन दोनों गतियों का परिणामिक मान सकते हैं । अतः हम कह सकते हैं कि एक प्रक्षेपास्त्र इसलिए धरती पर गिर कर थम जाता है क्योंकि सीधी रेखा में उसका आरंभिक वेग उतना नहीं था जो धरती पर गिरने से पहले उसे अंतरिक्ष में ले जा सकता । तब हम देख सकते हैं कि जैसे-जैसे प्रक्षेपास्त्र का आरंभिक वेग बढ़ता जाता है, धरती पर गिरने से पहले वह और दूर जाने लगेगा और किसी बिन्दु में उसका वेग इतना ज्यादा हो जाता है कि उसके नीचे गिरने की गति के बराबर गति में वह धरती के गोलाकार प्रतल से ऊपर उठ रहा होगा । संक्षेप में, एक नये सिद्धांत ने एक नये प्रकार का अध्ययन शुरू कर, और आँकड़ों की नये तरीके से व्याख्या कर यह दर्शाया कि खगोलीय वस्तुओं की गति, कम वेग में चलने वाली भूगोलीय वस्तुओं की गति का ही एक चरम रूप है ।

सामान्यतः प्रतिभासों के दो संग्रह एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न इसलिए लगते हैं क्योंकि उनके बारे में अध्ययन करने एवं ज्ञान को खोजने के लिए हमने अलग एवं निश्चित सिद्धांतों का इस्तेमाल किया है । हर एक सिद्धांत यह निर्धारित करता है कि हमें किस प्रकार का आंकड़ा खोजना चाहिए, किस प्रकार का प्रयोग करना चाहिए एवं इन आंकड़ों से किस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए । यदि दो संग्रहों के अन्वेषण हेतु हमने दो बिल्कुल ही भिन्न सिद्धांतों का इस्तेमाल किया है, तो हमें ज्ञान के जो अलग-अलग संग्रह हासिल होंगे उनमें अवश्य ही समानताएं कम होंगी एवं भिन्नताएं अधिक । हम इन ज्ञान संग्रहों को सीमित करने वाले या विरूप करने वाले चश्मे से चीजों को देखते हैं । अतः यदि यह चश्मा विभिन्न मायनों में सीमित या विरूप करता है तो हम भी वस्तुओं को अनेक रूपों में देखेंगे । यह अनेकता जो हमें दिखाई देती है खत्म हो सकती है अगर, लेकिन सिर्फ अगर, कोई नया सिद्धांत जन्म लेता है जो दोनों संग्रहों का अध्ययन एक ही ढांचे के अन्तर्गत संभव बनाता है, और इस प्रकार अनेकता की जगह एकता पैदा करता है ।

विषयों की संरचना की समस्याओं का भेद करने से पहले हमें एक चेतावनी पर ध्यान देना चाहिए । वह है : पहले से अलग ज्ञान संग्रहों को नवीन एवं एक करने वाले सिद्धांतों द्वारा समाकलित करते वक्त हम इस संभावना को अनदेखा नहीं करें कि प्रतिभासों के बीच दृश्यमान कुछ भेद वास्तविक हो सकते हैं; विषयों में कुछ भेदीकरण

चिरस्थायी हो सकते हैं । हाथ के आगे का हिस्सा, कोहनी फिर पीछे के हिस्से के समरूप प्रकृति में भी जोड़ हो सकते हैं । विज्ञान, नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र वास्तव में तीन बहुत ही अलग खोज विषयों का प्रतिनिधित्व करते होंगे । सब शास्त्रों में एकता का यह सिद्धांत जो सभी प्रकार के ज्ञान के एकीकरण का आग्रह करता है या तो एक अंधविश्वास है या एक उम्मीद पर कतई वास्तविकता नहीं है । निर्णायक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि अन्ततः सभी विषयों को एक हो जाना चाहिये या एक हो जायेंगे, हमारे पास कोई आंकड़ा नहीं है ।

अब हम इस चर्चा से अलग हट कर ज्ञान तथा ज्ञान की खोज के इस पूर्वावलोकन में उन तीन महत्वपूर्ण परन्तु संबंधित समस्याओं के समूह की पहचान करते हैं जो उस क्षेत्र को निर्धारित करती हैं जिसे पाठ्य विषयों की संरचना कहते हैं ।

सजीव से निर्जीव, विज्ञान से इतिहास आदि का भेद करने के प्रयासों की जो हमने संक्षिप्त समीक्षा की है उसे याद कीजिए । ये प्रयास पाठ्य विषयों की संरचना की पहली समस्या को चित्रित करते हैं । यह समस्या है पाठ्य विषयों की विषयवस्तु और उनकी व्यवस्था का निर्धारण, स्पष्ट रूप से भिन्न विषयों की पहचान तथा उनके परस्पर संबंधों की खोज ।

समस्याओं का यह समूह निम्नलिखित प्रश्नों से स्पष्ट होता है । क्या गणित का ज्ञान भौतिक वस्तुओं के ज्ञान से अत्यांतिक रूप से भिन्न है ? यदि हां, तो गणितीय वस्तुओं का व्यवहार भौतिक वस्तुओं के व्यवहार से कैसे संबद्ध है ? अर्थात्, विज्ञान में गणित की असाधारण उपयोगिता को हमें कैसे वर्णित करना चाहिये ? क्या ऐसा है कि हम भौतिक पदार्थों के पर्यवेक्षण में उन पर गणितीय ढांचों को थोपते हैं, या फिर बाह्य दुनिया की वस्तु किसी निगूढ़ तरीके से उन्हीं नियमों का अनुपालन करती है जिनका हम गणितीय खोज द्वारा आविष्कार करते हैं । इसी प्रकार हम व्यवहारिक जानकारी एवं वैज्ञानिक या सैद्धांतिक जानकारी के बारे में भी प्रश्न उठा सकते हैं, क्या वे एक ही हैं या फिर यथार्थ में अलग हैं; क्या व्यावहारिक ज्ञान मात्र विज्ञान का विनियोग ही है ? या ऐसा है कि विज्ञान, वस्तुओं के व्यावहारिक अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान का बहिर्वेशन करते हुए किसी आदर्श स्थिति पर पहुंचता है और उस आदर्श स्थिति की वैज्ञानिक जानकारी से वास्तविकता में लौटने के लिए व्यावहारिक ज्ञान के सेतु की आवश्यकता होती है ? प्रश्नों के इन समूहों को हम विषयों की संरचना की समस्या बुला सकते हैं, और हम याद रखें कि विषयों से हमारा मतलब सब विषयों से एक साथ है न कि पृथक् रूप से, एवं संरचना से तात्पर्य है परस्पर संबद्धता ।

शिक्षा के लिए इन प्रश्नों का महत्व सुस्पष्ट है । समकालीन ज्ञान एवं दुनिया के बारे में जानकारी प्रदान करने वाले उन विषयों

का पता लगाना ही पाठ्यविषयों की पहचान करना है जो विषय शिक्षा के संसाधन एवं दायित्व दोनों को संघटित करते हैं। शिक्षण के लिए किन विषयों को परस्पर जोड़ना चाहिये या किन विषयों को अलग रखना चाहिए, यह निर्धारित करने का अर्थ है इन विषयों के परस्पर संबंधों की पहचान करना। पाठ्यविषयों का अनुक्रम तैयार करने में हमारे निर्णयों पर भी इन संबंधों का भारी प्रभाव होता है, क्योंकि ये हमें बताते हैं कि कौन सा विषय किसके पहले आयेगा, कौन सा विषय पहले, दूसरे या तीसरे स्थान पर उचित रहेगा।

हमें यंत्र विज्ञान की एक प्रायः सर्वव्यापक प्रणाली उपलब्ध कराने में गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की जो अति महत्वपूर्ण भूमिका रही है उससे विषयों की संरचना से संबंधित प्रश्नों का दूसरा समूह स्पष्ट रूप से उदाहरित होता है। इसी तरह समस्त वैज्ञानिक जानकारी की प्राप्ति एवं प्रतिपादन में अन्य सिद्धांतों की भूमिका रही है। मनुष्य शरीर के कार्य करने के बारे में हमें जो जानकारी है, उसमें जीव की प्रकृति, उसके अलग-अलग अंगों के स्वभाव एवं उन अंगों में परस्पर संबंध आदि के बारे में कोई न कोई सिद्धांत अंतर्निहित है। अनुवांशिकता के बारे में हमें जो ज्ञान है उसके पीछे वह

सिद्धांत है जिसमें दो या अधिक घातांक वाले एक द्विसंघक के पदों के अनुरूप कणों का विस्तारण होता है। खेल के दौरान निर्णय लेने में हमारी कुशलता के पीछे भी इसी प्रकार के सिद्धांतों की भूमिका है। यहां भी सिद्धांत गणित के हैं; किसी द्विसंघक का अपनी सीमा तक विस्तारण से व्युत्पन्न किया हुआ द्विसंघक या और अधिक संकुल सूत्रों का विस्तारण। गणित के ये सिद्धांत हमें संभाव्यतावाद के पूरे सिद्धांत उपलब्ध कराते हैं जिनकी मदद से हम जुएं में अपना ढाँच-पेंच तय करते हैं, युद्ध में अपनी नीतियां निर्धारित करते हैं और उद्योगों में उत्पादन एवं बिक्री की आयोजना करते हैं। इसी प्रकार, मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार के ज्ञान में वृद्धि तभी संभव हुई जब मनोविज्ञान, समाज विज्ञान तथा मानव विज्ञान से संबंधित वैज्ञानिकों ने अपने शोध-कार्यों में सहायक सिद्धांतों का विकास किया।

सामान्यरूप से तब, अन्वेषण के मूल में कोई सैद्धांतिक ढांचा होता है जो ज्यादातर गणितीय होता है हालांकि यह कोई आवश्यक नहीं है। यही वह सैद्धांतिक ढांचा है जिसके अनुरूप हम

कोई सार्थक प्रश्न सूत्रबद्ध कर पाते हैं। इन्हीं सार्थक प्रश्नों के जरिये हमें यह पता चलता है कि किस प्रकार के आंकड़े खोजना है एवं इन आंकड़ों को पाने के लिए किस प्रकार के प्रयोग करने हैं। एक बार ये आंकड़े प्राप्त होने के बाद, यही सैद्धांतिक ढांचा हमें बताता है कि आंकड़ों की व्याख्या किस प्रकार की जाये और उससे किस प्रकार की जानकारी निकाली जाये। और अंत में, इसी सिद्धांत के अनुसार प्राप्त ज्ञान को सूत्रबद्ध करते हैं। शरीर के बारे में हम जो

ज्ञान अर्जित करते हैं उसे हम अंगों एवं क्रियाओं के संबंध में प्रतिपादित और प्रसारित करते हैं; आणविक संरचना के बारे में ज्ञान को हम कणों एवं तरंगों के संबंध में सूत्रित करते हैं एवं प्रचारित करते हैं; मनुष्य के व्यक्तित्व के बारे में हमारे ज्ञान के कुछ हिस्से हम मानसिक अवयवों और क्रियाओं के द्वारा और कुछ हिस्से मनुष्य के परस्पर संबंधों के द्वारा प्रतिपादित करते हैं।

प्रत्येक शास्त्र में एवं बहुत-सी कलाओं में इस प्रकार के सैद्धांतिक ढांचे प्रचलित हैं। पाठ्य-विषयों की संरचना से संबंधित दूसरी समस्या इन ढांचों की पहचान करना है और इनके मार्गदर्शन में होने वाली खोजों की क्षमताओं एवं सीमाओं को समझना है। समस्याओं के

इस समूह को हम पाठ्य विषयों के सैद्धांतिक ढांचों की समस्या कह सकते हैं।

शिक्षा के लिए इस समस्या का या कम से कम इसके एक हिस्से का महत्व तो काफी प्रत्यक्ष है। क्योंकि किसी ज्ञान के संग्रह के मूल में क्या ढांचा है, यह समझने से हम यह भी जान जाते हैं कि उस ज्ञान के प्रसार में क्या कठिनाइयां आ सकती हैं। पदार्थों की दो श्रेणियों को किसी एक मापदण्ड जैसे रूप या रंग द्वारा पृथक् करने में जो जटिलता है, हो सकता है सैद्धांतिक ढांचा उससे ज्यादा जटिल नहीं हो। उस परिस्थिति में हम मान सकते हैं कि छोटे बच्चों को भी यह ज्ञान प्रदान करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। संभवतः यह भी हो सकता है कि उक्त सैद्धांतिक ढांचा काफी जटिल हो, पर वह आम बुद्धि और जानकारी में ऐसा पैठा है कि विद्यार्थी अपनी छोटी उम्र में ही उसके सम्पर्क में आ चुका है और उससे परिचित है। इस परिस्थिति में भी हमें इस ज्ञान को सिखाने में कोई असुविधा नहीं होगी बशर्ते हम इसे हमारी संस्कृति में बच्चे के विकास के उचित समय पर सिखायें। किन्तु, मान लिया जाये कि वह सैद्धांतिक

संक्षेप में विषयों की संरचना से संबंधित आम समस्या में प्रश्नों के तीन पृथक् समूह अंतर्निहित हैं।

पहला प्रश्न है, विषयों का व्यवस्थापन: कितने विषय हैं, कौन कौन से हैं एवं वे आपस में किस प्रकार सम्बद्ध हैं। दूसरा प्रश्न है, प्रत्येक विषय द्वारा प्रयोग किया गया मूल सैद्धांतिक ढांचा। तीसरा प्रश्न है, प्रत्येक विषय की खोज शैली। इसके साक्ष्य एवं प्रमाण के क्या मापदण्ड हैं एवं कितनी बखूबी से उसका प्रयोग किया जा सकता है। अब हम इन प्रत्येक समस्याओं का संक्षेप में निरीक्षण करते हैं।

ढाँचा जटिल और आम विवेक में अप्रयुक्त दोनों ही है ? वर्तमान में तरंग रूपी कणों के भौतिक सैद्धांतिकरण की यही स्थिति है । ऐसी स्थिति में किसी सिद्धांत को ढूँढने और पहचान करने का अर्थ है शिक्षण की एक कठिन समस्या को खोजकर पहचान करना जिसमें बहुत प्रयोग तथा अध्ययन आवश्यक हैं ।

विषयों के 'सैद्धांतिक' ढाँचे की समस्या का पाठ्यक्रम के लिए दूसरा महत्व बहुत स्पष्ट नहीं है । यह हमारे ज्ञान पर इन सैद्धांतिक ढाँचों के एक अनोखे प्रभाव के बारे में है जिसके लिए हम हाल के समय तक कम ही चिंतित थे । ज्ञान की सैद्धांतिक ढाँचे पर निर्भरता का तात्पर्य है कि इसका (ज्ञान) कोई भी संग्रह अस्थायी होगा । क्योंकि जो ज्ञान किसी निश्चित सिद्धांत के प्रयोग से विकसित होता है वह साधारणतः उस विषयवस्तु में नयी उलझनों को उजागर करता है जिनको समझने के लिए नए सिद्धांतों का जन्म होता है । ये नए सिद्धांत नये अन्वेषणों को जन्म देते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा और नये और परिपूर्ण ज्ञान संग्रह नवीन रूप में सामने आते हैं । शिक्षा के लिए ज्ञान की इस क्षण भंगुरता का महत्व इस तथ्य में निहित है जिसमें वह शिक्षा को उस प्रकार प्रदान करने की आवश्यकता नहीं तो वांछनीयता को दर्शाता है ताकि विद्यार्थी यह समझें कि जो ज्ञान उन्हें प्राप्त है वह केवल शाब्दिक, तथ्यात्मक सत्य नहीं है परन्तु एक प्रकार का पेचीदा सत्य है । इसका तात्पर्य है कि हमें विद्यार्थियों को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि ज्ञान को पैदा करने में (एवं इसकी वैधता को सीमित करने में) सिद्धांतों की क्या भूमिका है, और उन्हें इस बारे में भी कुछ जानकारी प्रदान करनी चाहिए कि प्रत्येक विषयवस्तु के मूल में कौनसा सिद्धांत है और साथ ही इन सिद्धांतों के औचित्य की कुछ दलीलें तथा सीमाओं के कुछ संकेत भी प्रस्तुत करने चाहिए ।

पाठ्य विषयों की संरचना से संबंधित तीसरी समस्या को हम 'पाठ्य विषयों की खोज पद्धति' का प्रश्न बुलाएंगे । यह प्रश्न इस तथ्य में छुपा हुआ है कि , यदि अलग-अलग शास्त्र, अपनी विषय वस्तुओं पर अनुसंधान अलग-अलग सैद्धांतिक ढाँचों के अन्तर्गत करते हैं; तो बहुत संभव है कि अपने ज्ञान को प्रमाणित करने के तरीके में एवं प्रमाणन की सीमा में, एक दूसरे विषयों के बीच काफी भिन्नताएं होंगी । तब प्रश्न उठता है यह निर्धारित करने का कि प्रत्येक पाठ्य विषय खोज एवं साक्ष्य के लिए क्या तरीका अपनाता है, अपने आकड़ों को नापने में किस मापदण्ड का प्रयोग करता है, साक्ष्यों के मानकों को कितनी कड़ाई से लागू करता है, एवं आमतौर पर, उस मार्ग का निर्धारण करना जिसके द्वारा पाठ्य विषय अपने अपरिष्कृत आंकड़ों से आरंभ कर व्याख्या की एक दीर्घ या अल्पकालीन प्रक्रिया के माध्यम से अपने निष्कर्षों तक पहुंचता है ।

एक बार फिर, इस प्रकार के विश्लेषण से, शिक्षा के लिए कुछ अवश्यंभावी परिणाम स्पष्ट रूप से उभरते हैं । हमारा इरादा ज्ञान को केवल शाब्दिक एवं सैद्धांतिक मानना एवं तदनुसार विद्यार्थियों को हमारी वर्तमान संस्कृति का सिर्फ निष्क्रय एवं आज्ञाकारी सेवक मानना नहीं है क्योंकि हम चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी सीखे गये प्रत्येक ज्ञान संग्रह के बारे में यह जानें कि वह कितना युक्तियुक्त और कितना विश्वसनीय है ।

संक्षेप में विषयों की संरचना से संबंधित आम समस्या में प्रश्नों के तीन पृथक समूह अंतर्निहित हैं । पहला प्रश्न है, विषयों का व्यवस्थापन: कितने विषय हैं, कौन कौन से हैं एवं वे आपस में किस प्रकार सम्बद्ध हैं । दूसरा प्रश्न है, प्रत्येक विषय द्वारा प्रयोग किया गया मूल सैद्धांतिक ढाँचा । तीसरा प्रश्न है, प्रत्येक विषय की खोज शैली । इसके साक्ष्य एवं प्रमाण के क्या मापदण्ड हैं एवं कितनी बखूबी से उसका प्रयोग किया जा सकता है । अब हम इन प्रत्येक समस्याओं का संक्षेप में निरीक्षण करते हैं ।

पाठ्य विषयों की व्यवस्था का प्रश्न

पाठ्य विषयों की व्यवस्था के प्रश्न के साथ ही हम इस क्षेत्र की अवश्यंभावी उलझनों में एक खास उलझन से रूबरू होते हैं, यह कि इस प्रश्न का कोई एकमात्र, अधिकारिक जवाब नहीं है कि कितने प्रकार के विषय हैं, कितने विषय हैं, और उनके परस्पर संबंध क्या हैं ? इस उलझन का कारण प्रत्यक्ष है । विषयों की व्यवस्था की समस्या मुख्यतः एक वर्गीकरण संबंधी समस्या है । यदि हम जटिल वस्तुओं के किसी भी समूह को वर्गीकृत करना चाहते हैं तो उसके आधार के रूप में हमारे सामने कई विकल्प हैं । (डाक टिकटों को भी उनके मूल देश, रंग, बनावट या आकार या इन में से दो या अधिक के संयोजन के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं) । पाठ्य विषय अत्यंत जटिल हैं इसलिए वर्गीकरण के लिए उपलब्ध तरीके भी विविध एवं अनेक हैं । परिणामतः विषयों के जिस पहलू पर जोर देना चाहते हैं उसके अनुसार पर पहला, दूसरा, तीसरा, पांचवा या दसवां वर्गीकरण भी संभव है ।

विषयों के वर्गीकरण के लिए चार प्रकार के आधार सदैव ध्यान आकर्षित करते रहे हैं :

- (1) उनकी विषय-वस्तु - क्या खोजना चाहते हैं, या किस मुद्दे पर काम करना चाहते हैं,
- (2) उनके खोजकर्ता - अन्वेषण करने के लिए किस प्रकार की क्षमता एवं स्वभाव की आवश्यकता है,
- (3) उनसे संबंधित पद्धतियां एवं खोज रीति, जिनके जरिए खोजकर्ता विषयवस्तु पर काम करते हैं,

(4) उनका लक्ष्य - किस प्रकार के ज्ञान या निष्कर्ष को पाना चाहते हैं ।

अब हम पाठ्यक्रम से संबंधित समकालीन समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिए विषयों के कुछ समूहों का निरीक्षण करते हैं, जो इनमें से एक या अधिक आधारों का प्रयोग करते हैं ।

अरस्तू द्वारा प्रस्तावित शास्त्रों के मूलभूत व्यवस्थापन पर आज के समय में एक सरसरी नजर डालना उचित होगा क्योंकि वह जिसे महत्व देता है हम उसे भूलने लगे हैं। इस व्यवस्थापन के आधार के रूप में अरस्तू ने विषयों के लक्ष्य और साथ में विषय-वस्तु के स्वभाव का अधिक से अधिक प्रयोग किया । वर्गीकरण के लिए इन दो आधारों का प्रयोग करते हुए अरस्तू ने विषयों के तीन मुख्य समूहों की पहचान की, जिनके नाम विषयों के बारे में हमारी सामान्य बुद्धि में आज भी मौजूद हैं हालांकि उनको जो महत्व दिया गया था उसमें कमी आई है, या खत्म हो गया है। ये तीन मूलभूत विभाजन निम्न हैं - सैद्धांतिक, व्यावहारिक और सृजक ।

सैद्धांतिक विषय वे हैं जिनका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति से है । अरस्तू के लिए ज्ञान का अर्थ था असंदिग्ध रूप से अभिज्ञ होना। इसलिए सैद्धांतिक विषयों में सिर्फ उनको शामिल किया गया जिनकी विषयवस्तु ने ऐसे अटल नियम निष्ठा दर्शायी जिससे कि वे एक 'ज्ञानार्थ' खोज के पात्र बन सकते थे। अरस्तू के विचार में इस प्रकार के तीन सैद्धांतिक विषय थे भौतिक विज्ञान; गणित एवं तत्वमीमांसा । यद्यपि असंदिग्ध ज्ञान के बारे में संदेह हो सकता है लेकिन आज हम सैद्धांतिक विषयों के एक समूह की पहचान कर सकते हैं जिनका लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति था और उनकी विषय-वस्तु द्वारा जो ज्ञान खोजा जाता था वह उतना ही अटल था जितना कि कोई भी ज्ञान हो सकता है । भौतिक शास्त्र और जैविक शास्त्र, को हम इसी समूह में शामिल करेंगे । सामाजिक शास्त्रों के एक बड़े हिस्से को भी इस समूह में रखेंगे । तत्वमीमांसा के बारे में हमें संदेह है इसलिए वह बाहर रहेगा । गणित को भी बाहर ही रखेंगे, इसलिए नहीं कि वह संदेहास्पद है बल्कि इसलिए कि हम उसे बहुत विशिष्ट मानते हैं ।

अरस्तू के लिए व्यावहारिक विषयों में वे विषय शामिल थे जिनका संबंध सुविचारित निर्णयों पर आधारित चयन, निश्चय व

कर्म से था । चूंकि, उनका लक्ष्य कर्म और उसके जरिए घटनाओं की दिशा बदलने से था, ठीक उसी के अनुरूप उनकी विषय-वस्तुओं में ऐसी विशेषताओं का होना आवश्यक था जो सैद्धांतिक शास्त्रों के एकदम विपरीत थी । व्यावहारिक शास्त्रों की विषय-वस्तुओं को अत्यावश्यक रूप से अटल नहीं बल्कि बदलाव के लिए समर्थ होना है, उन्हें स्थिर नहीं, अपितु परिवर्तनशील होना है ।

आधुनिक समस्याओं पर अरस्तू के इस वर्गीकरण का प्रभाव

समझने के लिए यह ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है कि अरस्तू के लिए 'सुविचारित कर्म' से तात्पर्य उस कर्म से था जो अपने ही कारण किया गया हो न कि किसी अन्य लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रारंभिक तैयारी । तब, ऐसे कर्म जो खुद के कारण किये जाते हैं, उस जीवन का निर्माण करते हैं जिसे हम उत्तम जीवन कहते हैं । ये ऐसे क्रिया कलाप हैं जो हर व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमताओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति से उत्पन्न होते हैं । इसी कारण, राजनीति शास्त्र एवं नीतिशास्त्र व्यावहारिक शास्त्र थे और अभी भी हैं । वर्तमान में राजनीति एवं नीतिशास्त्र हमारे लिए केवल एक सुविचारित जीवन जीने व परखने तथा उच्च स्तरों में शासन एवं नीति निर्धारण के प्रत्येक व्यक्तिगत प्रयास को ही नहीं बल्कि विवेकशील (न कि यंत्रवत) अभिभावक व अध्यापक बनने के अत्यंत कठिन व दहला देने वाले उत्तरदायित्व और प्रशासन की जिम्मेदारी सभी स्तरों पर नीति निर्माण

को सामाजिक शास्त्रों के उन हिस्सों के साथ शामिल करेंगे जो इन क्रिया कलापों में योगदान करते हैं । मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्कूल सब कुछ करते होंगे लेकिन उपरोक्त में से कुछ भी नहीं करते । कुछ ही शिशु पाठशाला, प्रारंभिक स्तर पर बहुत कम अध्यापक एवं महाविद्यालय स्तर पर कुछ गिने चुने प्राध्यापक व प्राध्यापिकाएं ही अपने विद्यार्थियों में उन क्षमताओं व आदतों को विकसित करने की ओर सोच, समझ व ऊर्जा खर्च करते हैं जो उचित चयन व उचित निर्णय लेने में प्रेरित करती है तथा व्यक्ति को अपने निर्णयों के अनुरूप आचरण करने में मदद करती है । लेकिन कुल मिलाकर हमारे विद्यालयों के समय, उर्जा एवं संसाधन अरस्तूवादी अर्थों में व्यावहारिक विषयों के अस्तित्व तक को नकारते हैं ।

अरस्तू की योजनानुसार 'सृजक' विषय वे हैं जो 'सृजन' शब्द से सूचित होते हैं । निर्माण को समर्पित ये विषय निम्न हैं :

अरस्तू द्वारा प्रस्तावित शास्त्रों के मूलभूत व्यवस्थापन पर आज के समय में एक सरसरी नजर डालना उचित होगा क्योंकि वह जिसे महत्व देता है हम उसे भूलने लगे हैं । इस व्यवस्थापन के आधार के रूप में अरस्तू ने विषयों के लक्ष्य और साथ में विषय-वस्तु के स्वभाव का अधिक से अधिक प्रयोग किया । वर्गीकरण के लिए इन दो आधारों का प्रयोग करते हुए अरस्तू ने विषयों के तीन मुख्य समूहों की पहचान की, जिनके नाम विषयों के बारे में हमारी सामान्य बुद्धि में आज भी मौजूद हैं हालांकि उनको जो महत्व दिया गया था उसमें कमी आई है, या खत्म हो गया है। ये तीन मूलभूत विभाजन निम्न हैं - सैद्धांतिक, व्यावहारिक और सृजक ।

ललित कला, प्रायोगिक कला, यांत्रिकी । आधुनिक पाठ्यक्रमीय समस्याओं के लिए अरस्तूवादी सृजक विषयों के महत्व को समझते वक्त हमें उनकी इस पूरी व्यवस्था के एक मुख्य स्वभाव के बारे में जानना जरूरी है जो तीनों विषयों के समूहों के बीच भिन्नता पर जोर देता है । सैद्धांतिक विषय, जो कि ज्ञान प्राप्ति से संबंधित हैं वस्तुओं के उन पहलुओं में दिलचस्पी रखते हैं जो स्थिर, स्थाई एवं शाश्वत हैं । इसलिए, सैद्धांतिक विषयों का संबंध वस्तुओं के ठीक उन पहलुओं से है जिन्हें न तो हम निर्माण द्वारा बदल सकते हैं और न ही निर्मित कर प्रयोग में ला सकते हैं । उत्पादक विषयों का संबंध उनसे है जो परिवर्तनशील हैं, जिनका रूपांतरण किया जा सकता है । व्यावहारिक विषय मनुष्य स्वभाव की एक अन्य किस्म की परिवर्तनशीलता से संबंध रखते हैं । वह है अपने भविष्य के बारे में विचार करने और (एक सीमा तक) उसके लिए यथोचित कुछ करने की क्षमता ।

लेकिन दूसरी ओर हम सभी विषयों को विद्यालयों के लिए उपयुक्त मानने के आदी हो रहे हैं मानो कि वे सब के सब सैद्धांतिक हैं । व्यावहारिक विषयों की पूर्णरूपेण उपेक्षा कर हम उनके प्रति अपने पक्षपात को दर्शाते हैं । उत्पादक विषयों में से कुछ की हम उपेक्षा करते हैं और कुछ को चालाकी से सैद्धांतिक विषय के रूप में मान लेते हैं । संगीत रसास्वादन इस प्रकार सिखाया जाता है मानो कि उसका उद्देश्य संगीत रचनाओं एवं सिंफनियों के प्रत्यक्ष विषय को पहचानना और उस रचना तथा उसके रचयिता के नाम की गर्व के साथ घोषणा करना है । संगीत अनुष्ठान इस प्रकार सिखाया जाता है कि लगता है उसका लक्ष्य केवल स्वर चिन्हों का अनुसरण करना और स्वर लिपियों के बारे में अनुदेशक का पालन करना है। साहित्य की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है मानो नाटक और उपन्यास जिंदगी की तरफ झांकने के लिए उपयोगी झरोखे हैं, या और भी बदतर तरीके से जैसा कि संगीत के आस्वादन में होता है, मानो उसका मूल उद्देश्य ग्रंथकार के चरित्र, उसके जीवन और जीवनी के बारे में कुछ मजेदार बात सीखना है । साहित्य जैसे ही कलाओं में भी शिक्षा ऐसे दी जाती है मानो उनका एकमात्र उद्देश्य जीवन की एक सच्ची और विश्वसनीय छवि प्रस्तुत करना है । सौभाग्य से इन आलोचनाओं के अपवाद भी बढ़ रहे हैं । संगीत का आस्वादन अधिकाधिक उन कलाओं की प्रवीणता के रूप में सिखाया जाता है जिससे विद्यार्थी स्वर लिपि की वैकल्पिक व्याख्याओं से खोज करने एवं चयन करने के आधारों को सीखते हैं । कविता, साहित्य और नाट्य कला अधिकाधिक इस प्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण के पात्र बन रहे हैं जिससे उनको परोक्ष अनुभूतियों के किसी स्रोत के रूप में नहीं बल्कि अच्छी कलाकृतियों के रूप में आस्वादित करना संभव हो गया है । कला के कई अध्यापक अपने विद्यार्थियों को रचनात्मक

कार्य के लिए अनुमति देते हैं जो अभी तक समाज किसी पेशेवर कलाकार को ही देता था । फिर भी, उत्पादक विषयों का सैद्धांतिकरण अभी भी काफी प्रचलित है जिसके चलते इस चेतावनी की प्रासंगिकता बनी हुई है ।

शास्त्रों के व्यवस्थापन के एक और तरीके पर हम नजर डालते हैं, जो इसलिए उल्लेखनीय है कि हर पूर्व स्नातक पीढ़ी के साथ उसके एक अनुवाद का पुनर्जन्म होता है । यह है अगस्ते कॉम्टे द्वारा प्रस्तावित शास्त्रों की 'सकारात्मक श्रेणीबद्धता' । यह इस धारणा पर आधारित है कि विषयवस्तु को और केवल विषयवस्तु को ही वर्गीकरण का आधार बनना चाहिये । इसके अतिरिक्त इसका यह भी विचार है कि विषय-वस्तुओं को विषयवस्तुओं के अनुसार ही क्रमबद्ध करना चाहिये, अर्थात् कॉम्टे यह स्थापित करते हैं कि प्रक्रियाएं क्रमबद्ध की जा सकती हैं, निचले क्रम के अंगों को जटिल ढांचों में संयोजित करने पर अगले क्रम का गठन होता है । दुनियाँ के बारे में इस चीनी पेटीनुमा धारणा का प्रयोग कर कॉम्टे ने भौतिक वस्तुओं को सबसे सरल श्रेणी माना (संभाव्यतः आधुनिक समय के मूलभूत कर्णों जैसे) । अगली श्रेणी में रासायनिक पदार्थ आते हैं जो भौतिक पदार्थों का एक नया सम्मिश्रण हैं । रसायनों के और श्रेष्ठ संयोजन से जैविकों की उत्पत्ति होती है । और अंत में जैविकों के सम्मिलन से सामाजिकी उत्पन्न होती है । अतः कॉम्टे की शास्त्र श्रेणीबद्धता इस प्रकार है भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान । इसके बाद कॉम्टे एक अंतिम घटक को जोड़ते हैं । संपूर्ण संरचना के मूल में वे एक 'शास्त्र' गणित को रखते हैं जो अपने अलावा सभी शास्त्रों के अध्ययन को नियंत्रित करने वाली स्वाभाविक युक्ति के रूप में माना गया है ।

शायद इसकी स्वाभाविकता एवं प्रत्येक पीढ़ी से पुनर्जीवित होने की इसकी प्रवृत्ति की वजह से ही पाठ्य विषयों की यह विशिष्ट व्यवस्था हमारे समय के अत्यंत निरंकुश व अपरीक्षित (पाठ्यक्रम) सिद्धांतों में से एक रही है । मुझे संदेह है कि इसने देश में उच्च विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर संपूर्ण शास्त्रों के अध्ययन के अनुक्रम व व्यवस्था को कम से कम 35 प्रतिशत तक निर्धारित किया है । जीव-विज्ञानी यह कह कर अपना काम आसान करना चाहता है कि उसके विषय के पहले रसायन शास्त्र सिखाया जाना चाहिये । रसायन शास्त्री आग्रह करता है अपने से पहले भौतिकी की पढ़ाई होनी चाहिए । भौतिकी के वैज्ञानिक यह चाहते हैं कि गणित की शिक्षा पहले हो । अपने इन दावों के मूल कारण के रूप में प्रत्येक वैज्ञानिक कॉम्टे की श्रेणीबद्धता का संदर्भ देता है ।

इस धारणा में कुछ औचित्य है लेकिन कई असंगतियां भी हैं । क्योंकि कॉम्टे की श्रेणी को ठीक विपरीत तरीके से भी समझा

जा सकता है। वैसे यह बात कॉम्टे भली भाँति जानते थे कि उनके सिद्धांतों से अलग हुए बिना भी उनकी श्रेणी का प्रतिलोमित अध्ययन संभव है। यह सिद्धांत मांग करता है कि अपने ऊपर वाली श्रेणी के शास्त्र का विकास हो, इसके लिए नीचे की प्रत्येक श्रेणी के शास्त्र का पूर्णरूप से विकास किया जाना चाहिये। इस प्रकार एक पर्याप्त समाजशास्त्र एक परिपूर्ण प्राणीशास्त्र का अनुचर होगा, बदले में प्राणिशास्त्र तब तक परिपूर्ण नहीं हो सकता, जब तक रसायन शास्त्र पूर्ण नहीं हो जाता, इत्यादि। इससे लगता है यह सुझाव मिल रहा है कि भौतिक शास्त्र का विकास मात्र भौतिक वस्तुओं के अध्ययन के द्वारा ही करना चाहिए एवं रसायन शास्त्र को तब तक स्थगित करना चाहिए जब तक कि भौतिक वस्तुओं का अध्ययन पूर्ण नहीं हो जाता। इसी तरीके से, रसायन शास्त्र का विकास भी मात्र रसायनों के अध्ययन द्वारा किया जायेगा, प्राणी शास्त्र को तब तक के लिए स्थगित करते हुए जब तक कि रसायन शास्त्र का अध्ययन पूरा नहीं हो जाता। फिर भी, यदि हम कॉम्टे के मूल सिद्धांतों का करीब से अवलोकन करते हैं तो यह स्पष्ट अनुभव होता है कि घटकों एवं रसायनों की पूर्ण तथा सकारात्मक जानकारी केवल तभी विकसित की जा सकती है जबकि हमने उन सभी आचरणों की पहचान कर ली है जिनसे गुजरने में रसायन समर्थ है।

इस बिन्दु पर वह प्रारंभिक परिणाम उत्पन्न होता है जो कॉम्टे की श्रेणी को एक प्रतिलोमित अध्ययन की तरफ ले जाता है। क्योंकि, यह स्पष्ट है कि यदि जैविक वस्तु रासायनिक वस्तुओं का ही एक सम्मिश्रण है तब, जैविक उस स्थान की रचना करते हैं जिसमें रासायनिक विभवों का एक विशाल व्यूह साकार होता देखा जा सकता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि जीव शास्त्र के अध्ययन के पहले रसायनशास्त्र की पूर्णता अनिवार्य है, इसी प्रकार समाज शास्त्र के अध्ययन के पहले जीव शास्त्र का संपूर्ण ज्ञान जरूरी है, इत्यादि।

कॉम्टे के समय से विज्ञान में जो विकास हुए हैं, वे उसके द्वारा प्रतिपादित श्रेणीबद्धता की उपरोक्त परिभाषा को बखूबी साबित करते हैं। जीव-जन्तुओं के शरीर के जटिल रसायनों के अध्ययन

से ही कार्बनिक रसायन शास्त्र का विकास हुआ है। हमने मानव संस्कृति एवं समाज का अध्ययन किया, इसीलिए मानव व्यवहार के बारे में बेहतर समझ प्राप्त हुई। आणविक संरचना के बारे में समुचित सिद्धांतों के विकास का आधार रसायनों का ज्ञान है। अतः हम देखते हैं कि कॉम्टे की श्रेणीबद्धता को नीचे समाज शास्त्र से शुरू कर क्रमशः जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी एवं गणित

की तरफ पढ़ना जितना युक्तियुक्त है उतना ही युक्तियुक्त इसे ऊपर की ओर गणित से शुरू कर, क्रम में भौतिकी, रसायन विज्ञान फिर जीव विज्ञान और अंत में समाज शास्त्र की तरफ पढ़ना है।

इस अवस्था में, कॉम्टे की श्रेणीबद्धता के उर्ध्वगामी अध्ययन को हम पाठ्यक्रम निर्धारण का असंदिग्ध सिद्धांत मानकर, भौतिकी के पूर्व गणित एवं रसायन के पूर्व भौतिकी के अध्ययन के हमारे दावों को उचित नहीं ठहरा सकते। बल्कि, हम यह तर्क दे सकते हैं कि उन्नत शास्त्रों के पठन के समय आवश्यकता पड़ने पर सभी शास्त्रों का कुछ-कुछ अंश सिखाया जाना चाहिए। उदाहरण स्वरूप भौतिक वस्तुओं के प्रत्यक्ष व्यवहारों का निरीक्षण करते हुए भौतिकी एक बिन्दु तक पढ़ायी जा सकती है, जहां शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों को ही यह आभास हो जाता है कि भौतिकी में आगे प्रगति के लिए संक्रियाओं के बारे में कुछ गणितीय सिद्धांतों का ज्ञान आवश्यक

है। इस बिन्दु में प्रशिक्षण गणित की ओर मुड़ जायेगा जो भौतिकी के विकास के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार जीवित कोशिका के सूक्ष्म रसायन शास्त्र को जीव-जन्तु उनके स्थूल अंग और क्रियाओं के अध्ययन की एक पूर्वापेक्षा के रूप में नहीं बल्कि जीवों के प्रत्यक्ष व्यवहार, उनके अंगों की व्यवस्था और जीव रासायनिक स्वभावों को इस प्रकार सिखाया जायेगा ताकि वह विद्यार्थियों को पहले से ही सीखे हुए भौतिक रासायनिक स्वभावों जैसे अर्थपूर्ण लगे।

कॉम्टे की श्रेणी के ऊर्ध्वगामी अध्ययन पर आधारित पूर्वापेक्षाओं के इस पाठ्यक्रमीय अनुक्रम को, अक्सर शिक्षण का 'तर्कसंगत क्रम' कहा जाता है। फिर भी यह तथ्य, कि कॉम्टे की श्रेणीबद्धता को दोनों ओर से युक्तियुक्त पूर्वक पढ़ा जा सकता है, हमें

शायद इसकी स्वाभाविकता एवं प्रत्येक पीढ़ी से पुनर्जीवित होने की इसकी प्रवृत्ति की वजह से ही पाठ्य विषयों की यह विशिष्ट व्यवस्था हमारे समय के अत्यंत निरंकुश व अपरीक्षित (पाठ्यक्रम) सिद्धांतों में से एक रही है। मुझे संदेह है कि इसने देश में उच्च विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर संपूर्ण शास्त्रों के अध्ययन के अनुक्रम व व्यवस्था को कम से कम 35 प्रतिशत तक निर्धारित किया है। जीव-विज्ञानी यह कह कर अपना काम आसान करना चाहता है कि उसके विषय के पहले रसायन शास्त्र सिखाया जाना चाहिये। रसायन शास्त्री आग्रह करता है अपने से पहले भौतिकी की पढ़ाई होनी चाहिए। भौतिकी के वैज्ञानिक यह चाहते हैं कि गणित की शिक्षा पहले हो।

महसूस कराता है कि किसी एक को ही तर्क संगत बताना एक अपवाद है। दोनों क्रम तर्कसंगत हैं। गणित से लेकर सामाजिक शास्त्र तक ऊर्ध्वगामी अध्ययन को हम 'रूढ़िवादि' क्रम कह सकते हैं, याने उन प्रक्रियाओं से जिनकी व्याख्या होनी है, उन व्याख्याओं तक जो उस शास्त्र द्वारा विकसित की गई हैं। 'अन्वेषी क्रम' और रूढ़िवादि क्रम के बीच एक पाठ्यक्रमीय चयन मात्र विषय वस्तु पर आधारित मानदण्ड से नहीं किया जा सकता। बल्कि इस निर्णय के लिए हमें अपने विद्यार्थियों की क्षमताओं, सीखने के तरीकों की जानकारी, और हमारे उन लक्ष्यों की तरफ देखना चाहिये जिनको हासिल करने की अपेक्षा हम अपने विद्यार्थियों से करेंगे।

विषयों की खोज पद्धति का प्रश्न

यदि तमाम विषयों का लक्ष्य मात्र जानकारी हासिल करना होता, और अन्वेषित ज्ञान मात्र सरल तथ्य होते, तो विषयों की खोज पद्धति से संबंधित कोई समस्या ही नहीं थी। जैसा कि हमने अनुभव किया है पाठ्यविषय इतने सरल नहीं हैं। कई विषय निश्चित ही अस्तुवादी मायने में सैद्धांतिक नहीं हैं, वे ज्ञान नहीं कुछ और ढूंढते हैं - निर्माण करना, निर्मित वस्तुओं को उपभोग करना, एवं सम्प्रेषण चयन व कर्म की निपुणता तथा आदत। जो विषय सैद्धांतिक हैं वे विभिन्न किस्मों के ज्ञान की खोज (अपनी विषय वस्तु के अनुसार) करते हैं, फलतः प्रमाण एवं औचित्य के लिए अलग तरीके व मापदण्ड अपनाते हैं। उदाहरण स्वरूप, विज्ञान काफी सामान्य या प्रापंचिक ज्ञान को खोजता है, जबकि इतिहास सर्वाधिक विस्तृत एवं विशिष्ट जानकारी को खोजता है। प्रत्येक अन्वेषित वस्तु की अपनी खास समस्याएं भी हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं का ज्ञान भी भिन्न-भिन्न तरीकों से खोजा जाता है। विज्ञानों के बीच भी काफी भिन्नतायें हैं। जीव वैज्ञानिकों को छोटे छोटे टुकड़ों में जानकारी खोजना आवश्यक या वॉछनीय लगता है जबकि भौतिकी के वैज्ञानिक वृहद् मात्रा में विषय वस्तुओं को समाविष्ट करने वाले व्यापक, ग्राह्य सिद्धांतों को खोजने के लिए कठिन प्रयास करते हैं। ज्ञान के एक अकेले हिस्से की स्वीकृति को उचित ठहराने वाला प्रमाण एवं एक व्यापक ग्राह्य सिद्धांत की स्वीकृति को उचित मानने वाला प्रमाण, दोनों अलग किस्म के हैं। चुनाँचे हर विषय या विषयों के छोटे समूहों के बारे में यह निर्धारित करने की समस्या है कि खोज के लिए वे कौन से तरीके अपनाते हैं, प्रमाणित ज्ञान से उनका क्या तात्पर्य है एवं वे यह प्रमाणीकरण किस प्रकार करते हैं।

इस विविधता को चित्रित करने के लिए हम तीन वस्तुओं को लेते हैं, जिनका अस्तित्व निश्चित रूप से है एवं जिनके कुछ सुस्पष्ट

स्वभाव एवं विशेषताएं हैं। हम पहले, एक कार, दूसरे एक इलेक्ट्रान एवं तीसरे एक न्यूट्रॉनों को लेते हैं। अब इनके बारे में निम्नलिखित तीन वक्तव्यों को लेते हैं :

घर के सामने खड़ी कार का रंग काला है।

इलेक्ट्रान कम द्रव्यमान एवं निगेटिव चार्ज वाला एक छोटा कण है।

न्यूट्रॉनो एक छोटा कण है जिसका कोई चार्ज नहीं है और विश्राम पर कोई द्रव्यमान नहीं है।

माना जाए कि ये तीनों वक्तव्य सच हैं। जब हम निम्नांकित तथ्यों पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि ये तीनों अलग अलग अर्थों में सच हैं। हम विश्वास के साथ जब यह कहते हैं कि घर के सामने वाली कार काले रंग की है, ऐसा हम दो आधारों पर बोलते हैं। प्रथम, हम कार एवं इसके पड़ोस को देखते हैं और जो हमने देखा उसका विवरण देते हैं। दूसरा, हम एक साथी को कार एवं उसके पड़ोस को देखने के लिए बुलाते हैं, हम वह कथन दोहराते हैं जो बतलाता है कि हमने क्या देखा एवं हमारा साथी सहमति प्रकट करता है। इस प्रकार खोज की यह एक बहुत ही सरल पद्धति है जो जिन वस्तुओं के बारे में हम वक्तव्य देना चाहते हैं उनका केवल एक सरल व्यक्तिगत अनुभव और हमारे स्वयं, अन्य खोजकर्ता व खुद उस वस्तु के बीच एक चेष्टा की मांग करती है।

इसके विपरीत, वह पद्धति काफी जटिल है जो हमसे यह दावा करवाती है कि इलेक्ट्रान कम द्रव्यमान एवं निगेटिव चार्ज वाला एक छोटा अणु है। निश्चित ही यह कथन इस तथ्य पर निर्भर नहीं है कि मैंने इलेक्ट्रान को देखा है तथा मेरे साथी ने भी उसे देख कर सहमति प्रकट की है। यह कथन इस प्रकार की पद्धति से उत्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि इलेक्ट्रान दृष्टिगोचर नहीं है। बल्कि, यह उस पद्धति पर निर्भर है जो बिल्कुल भिन्न वस्तुओं का अवलोकन करती है, उनके बारे में सहमति प्राप्त करती है, और तब दो चरण और जोड़ती है। हम कुछ प्रक्रियाओं को ध्यानपूर्वक देखते हैं, फिर जो देखा है उसके लिए स्पष्टीकरण खोजते हैं। व्याख्या के लिए हम एक अति सूक्ष्म कण के अस्तित्व की कल्पना करते हैं। फिर हम उसे ठीक उतना ही द्रव्यमान, आकार और चार्ज आवंटित करते हैं जिससे यह कण, यदि इसका अस्तित्व होता तो, उस प्रक्रिया को जन्म देता जिसे हमने देखा है। स्पष्टीकरण खोजने के अलावा, प्रक्रिया में ही दो और चरण छिपे हुए हैं। पहला, हम जिस प्रक्रिया के लिए चिंतित हैं उसके अनुरूप ही किसी सिद्धांत की कल्पना करते हैं। फिर भी हम हर किसी सिद्धांत से जो उसके अनुरूप हैं संतुष्ट नहीं होते हैं। बल्कि हम चाहते हैं कि वह एक दूसरी शर्त का भी

पालन करे : वह विज्ञान के निर्माण करने वाले ज्ञान संग्रह के अनुरूप एवं सुसंगत हो । इलेक्ट्रान भौतिक ज्ञान के उस समूचे संग्रह से जुड़ जाता है जिसे गुरुत्वाकर्षण गतिकी कहते हैं । एक खास विद्युत चार्ज के निर्धारण से यह कण विद्युत एवं उसके गतिक नियमों से बंध जाता है ।

न्यूट्रीनो के बारे में हमारा दावा एक तीसरे किस्म की पद्धितीय संरचना पर आधारित है । क्योंकि न्यूट्रीनो केवल अदृश्य ही नहीं बल्कि इलेक्ट्रान जैसे चार्ज एवं द्रव्यमान जैसी विशेषताएं भी इसमें अनुपस्थित हैं । विशेषताओं की अनुपस्थिति का यह अर्थ होता है कि साधारण तौर पर न्यूट्रीनो के व्यवहार का कोई परिणाम स्पष्ट नहीं होता, वे ऐसी कोई प्रक्रियाओं को उत्पन्न नहीं करते जैसी हमने पहले निरीक्षण की थी और जिनके लिए इलेक्ट्रान के अस्तित्व को उत्तरदायी ठहराया था । न्यूट्रान के अस्तित्व को स्वीकारने के लिए जो आधार बनाया गया वह लगभग इस प्रकार था : बीटा अपक्षय नामक एक प्रक्रिया के दौरान कुछ परिणाम देखे गये, जो हमारे कथित (द्रव्यमान) संरक्षण सिद्धांतों के अपवाद के रूप में प्रत्यक्ष हुए, जिन सिद्धांतों को हम भौतिक शास्त्र के आधार मानते हैं । इन बीटा अपक्षय प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने का एक तरीका यह भी हो सकता था कि उन्हें संरक्षण सिद्धांतों का एक खंडन माना जाए । इसका दूसरा तरीका यह भी हो सकता था कि बीटा अपक्षय को संरक्षण सिद्धांतों का एक अपवाद माना जाए और उसके बाद उसके लिए एक तदर्थ स्पष्टीकरण की कल्पना की जाए । बहरहाल, भौतिकी वैज्ञानिकों ने संरक्षण सिद्धांतों को अखंड एवं सर्वव्यापक मानना पसंद किया (जिनके कारणों की चर्चा मैं यहां नहीं करूंगा) और इन सिद्धांतों को सुरक्षित रखने के लिए, करीब-करीब अग्राह्य एक कण की कल्पना करना ही एकमात्र विकल्प समझा जो मात्राओं को उडा ले गया वरना उनकी अनुपस्थित संरक्षण सिद्धांतों पर प्रश्न चिन्ह लगा देती ।

तब हमें यहां तीन अलग भाव देखने को मिल रहे हैं जिनमें किन्हीं वक्तव्यों को सच या उचित कहा जाता है, व स्वयं वक्तव्य इन विभिन्नताओं को उद्घाटित नहीं करते । सभी वक्तव्य एक प्रकार के हैं - कार काली है, न्यूट्रीनो इस प्रकार है, इलेक्ट्रान कुछ और है, आदि । केवल हर वक्तव्य के पीछे छिपे संदर्भ, समस्या का ढांचा, प्रमाण, अनुमान एवं परिभाषा जो मिलकर खोज शैली को

रूप देते हैं, हमारे सामने अलग-अलग भाव प्रकट करते हैं जिसमें प्रत्येक वक्तव्य सच है ।

खोज एवं प्रमाणीकरण की पद्धतियों पर शोध करने की विधियों की इस विविधता का अर्थ निम्न प्रकार है : अधिकांश विषयों के अधिकांश वक्तव्य एक वाक्य के एक एक शब्द जैसे हैं । ये शब्द अपने सबसे प्रभावशाली अर्थ उस वाक्य के प्रसंग में वाक्य रचना में अपनी जगह से प्राप्त करते हैं न कि शब्द कोश या स्वयं अपने आप से । एफ बराबर एम ए या स्वतंत्र पतन, इलेक्ट्रान, न्यूट्रानों आदि का अर्थ उसी प्रक्रिया के संदर्भ में स्पष्ट होगा जिसके द्वारा उनकी खोज हुई है ।

सीखने एवं सिखाने को सरल बनाने के लिए विषयवस्तु तैयार करने में शिक्षकों द्वारा की गई एक विशेष भूल के कारण, अन्वेषण के संदर्भ की इस आवश्यकता को सर्वव्यापक रूप से अनदेखा किया गया है । उन्हें यह मानने की अनुमति दी गई है, या सचमुच स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि अध्ययन में 'वैज्ञानिक तरीका' या 'आगमन' माने कोई सरल, एकरूप व सुनिश्चित प्रक्रिया है । सच्चाई इसके ठीक विपरीत है : 'आगमन' कोई

एक रूप, सुस्पष्ट प्रक्रिया नहीं है, बल्कि विभिन्न चिंतकों द्वारा अपनाई गई खोज प्रक्रिया के साथ संलग्न करने वाला एक सम्मान सूचक शब्द है । कुछ चिंतकों के लिए 'आगमन' का मतलब बार-बार दोहराने वाली किसी भी घटना की गिनती से है जिससे हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनमें एक जैसा क्या है । इस दृष्टिकोण के अनुसार 'आगमन' का परिणाम 'सामान्यीकरण' है । कुछ अन्य चिंतकों के लिए 'आगमन' का अर्थ प्रक्रियाओं का छोटी घटनाओं में विश्लेषण है और यह समझने का प्रयत्न है कि कौन-सी घटनाएं किन घटनाओं के पूर्व घटित हुई हैं । और, और भी कई चिंतकों के लिए आगमन से तात्पर्य है उन नये विचारों को जन्म देना, जो सबसे लघु तरीके से अतीव विभिन्न प्रक्रियाओं को स्पष्ट करें, कारण बताएं व समाविष्ट करें, चाहे प्रत्यक्ष प्रमाणीकरण से वे कितने ही दूर क्यों न हों ।

पाठ्य विषयों के सैद्धांतिक ढांचों का प्रश्न

जैसा हमने अपनी प्रस्तावना में जिक्र किया है, सबसे पहले हम सैद्धांतिक ढांचों की धारणा को पुनर्विकसित करते हैं ।

जब हम किसी विषय की खोज का प्रस्ताव रखते हैं तो यह सच है कि हम उस विषय के बारे में काफी हद तक अपनी अनभिज्ञता स्वीकारते हैं। हो सकता है हमें उस विषय का सतही ज्ञान हो या अपनी व्यावहारिक समस्याओं के दौरान हम उस विषय वस्तु के सम्पर्क में आये हों लेकिन, विषय की खोज का प्रस्ताव यह ही यह सिद्ध करता है कि हमें अपने ज्ञान पर शंका है या हम इसे पूरी तरह अपर्याप्त मानते हैं। इस प्रकार खोज की शुरूआत वास्तविक अनभिज्ञता में ही होती है। लेकिन, अनभिज्ञता खोज को आरंभ नहीं कर सकती। क्योंकि खोज की मांग करने वाले विषय वे विषय हैं जो अपनी अनंत किस्म की विशेषताओं, क्षमताओं, आचरणों एवं परस्पर क्रियाओं को हमारे दृष्टिकोण के सामने रख हमें हतप्रभ कर देते हैं। विषयों की यह प्रचुरता खोज को गतिहीन करती है क्योंकि सभी को एक साथ संभालना बहुत ही कठिन है, और साथ ही अनभिज्ञता की अवस्था में हमारे पास ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे हम कम तथ्यों से अधिक जानकारी हासिल कर सकें, हम अपनी विषय वस्तु के बारे में अत्यंत प्रभावी एवं एकदम नगण्य तथ्यों में कोई भेद नहीं कर पाते हैं। संक्षेप में, यदि हमें आँकड़ों का संग्रह करना है तो हमारे पास किसी प्रकार की मार्गदर्शिका अवश्य होनी चाहिए जो प्रासंगिक एवं अप्रासंगिक, तथा आवश्यक एवं अनावश्यक तथ्यों की पहचान करा सके।

खोज में मार्गदर्शिका की यह भूमिका खोजकर्ता द्वारा ग्रहीत या आविष्कृत अवधारणा द्वारा अदा की जाती है। ये अवधारणाएं विषय के सैद्धांतिक ढांचों का निर्माण करती हैं।

उदाहरण के तौर पर, हम खोज की प्रारंभिक अवस्था को लेते हैं जो आज से करीब साठ वर्षों पहले जन्तु व्यवहार के अध्ययन में विद्यमान थी। उस समय जलीय जन्तुओं के व्यवहार के बारे में हमारी जानकारी उस सचेत बच्चे की जानकारी से अधिक नहीं थी जिसने अपने खेत की तलैया और नाले में मछली की फुदकन, बेंगचियों की क्रीड़ा एवं कीट डिम्बों की हलचल को ध्यान से देखा था। तब हम इन फुदकनों, क्रीडाओं और हलचलों के बारे में क्या खोज करें? क्या हम यह सवाल करें कि यह किन जरूरतों को पूरा करती हैं? शायद। लेकिन, हमें यह नहीं मालूम कि इनमें जरूरतें भी शामिल हैं। तब, क्या हम यह सवाल करें कि जन्तुओं के मन में क्या उद्देश्य होते हैं? लेकिन, हमें यह नहीं मालूम कि जन्तुओं के मन में किसी प्रकार के उद्देश्य होते भी हैं कि नहीं? तब, क्या हम इन गतियों के उन नमूनों एवं अनुक्रम की खोज करने की कोशिश करें जिनमें यह घटित होती हैं। पर इसमें कठिनाई यह है कि जब काफी संख्या में गतियां शामिल होती हैं तो हमें अपने स्वयं

(मनुष्य शरीर) के उदाहरण से समझ लेना चाहिए कि वे सब परस्पर संबंधित नहीं हैं। अतः उनका एक समावेशक अनुक्रम सारहीन होगा। फिर भी, हम गतियों के प्रत्येक उप-समूह की पहचान नहीं कर सकते क्योंकि अभी तक हमें न तो इन गतियों के आरंभ ('आवश्यकताओं, जरूरतों, उद्दीपन') की जानकारी है, और न ही इनकी समाप्ति ('लक्ष्यों, "आवश्यकता-तृप्ति", अंतिम प्रतिक्रिया') की जानकारी है।

खोज की इस कुण्ठा का निराकरण उस समय प्रचलित इस धारणा का सहारा लेते हुए किया गया कि जीवित वस्तुओं सहित सभी वस्तुएं लघु यंत्रों से अधिक और कुछ नहीं हैं जिनकी सहज बनावट उन्नीसवीं सदी की भौतिकी को मालूम नहीं थी। इसके साथ ही यह माना गया कि इस प्रकार की कोई भी उद्दीपित प्रतिक्रिया दो संभावित किस्मों में से केवल एक ही हो सकती है - या तो उद्दीपक की ओर या इससे हटकर एक गति। इस प्रकार की गति का नाम "अनुवर्तन" और "अनुचलन" रखा गया; उद्दीपक की ओर गतियों को पोजिटिव व इससे हटकर गतियों को निगेटिव कहा जाता है लघु यंत्रों की इस धारणा को जन्तु व्यवहार के अध्ययन में यह मानते हुए लागू किया गया कि किसी जन्तु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गति वातावरण में उद्दीपन पैदा करने वाले कोई एक मात्र, निश्चित घटक के जवाब में प्रतिक्रिया थी।

वर्तमान में अप्रचलित इस सरल धारणा ने हमें पूछने के लिए प्रश्न उपलब्ध करा कर खोज की कुण्ठा को दूर किया। हमें प्रत्येक जन्तु के लिए यह निर्धारित करना था कि उसने किस उद्दीपन का जवाब दिया और यह प्रतिक्रिया पोजिटिव अर्थ में थी कि निगेटिव अर्थ में। इन संलक्षित प्रश्नों ने बतौर निरीक्षण के प्रारूप को निर्धारित किया। हमें अपने जलीय जन्तु को यह निश्चित करते हुए पानी के एक हौज में रखना था कि केवल एक के अलावा सभी भौतिक उद्दीपक पूरे हौज में एक समान थे, उदाहरण के लिए, एक उद्दीपक रोशनी को हौज के एक सिरे पर अधिक तीव्र व दूसरे सिरे पर कम तीव्र रखा, और तब हमारे महत्वपूर्ण आधार के रूप में, इस बात का ध्यान रखा कि जन्तु किस ओर गया। इसके बाद जन्तु व्यवहार के हमारे ज्ञान को उन पोजिटिव व निगेटिव अनुवर्तनों की एक तालिका में दर्शाना था जो हर अन्वेषित प्रजाति के लिए विशिष्टता सूचक है।

ऐसी ही सरल अवधारणाओं ने दूसरे जटिल क्षेत्रों में खोज की शुरूआत करने में हमारी मदद की। ससंसार के द्रव्यों के व्यूह पर "तत्व" की धारणा को लागू करते हुए रसायनशास्त्र उनके अध्ययन में महत्वपूर्ण प्रगति कर सका। "तत्व" से तात्पर्य परम सरल द्रव्य

से है, एक द्रव्य जो स्वयं अपने आप का ही बना हुआ है एवं ऐसे ही सरल द्रव्य में परिवर्तित होने में असमर्थ है। इस धारणा ने रसायन शास्त्रियों द्वारा द्रव्य के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्नों एवं परीक्षण के नमूनों को तय किया। मूलभूत प्रश्न यह था कि यह द्रव्य और किस सरल द्रव्य में अपघटित किया जा सकता है? अतएव, विश्लेषण व संश्लेषण परीक्षण के पैटर्न थे। मानव व्यक्तित्व के बारे में प्राचीन खोजों के मार्गदर्शन के लिए भी इसी प्रकार के “तत्वों” की अभिकल्पना की गई थी।

हमने व्यक्ति की कल्पना बहुत सी ‘विशेषताओं’ में से हर एक विशेषता को कुछ अधिक या कुछ कम मात्रा में रखने वाले के रूप में की। रासायनिक तत्वों के समान ही इस प्रकार की प्रत्येक विशेषता (जैसे साहस, कल्पनाशीलता, तार्किक बुद्धि, श्रमशीलता) भी सरल और दूसरी अन्य विशेषताओं से स्वतंत्र मानी गई।

खोज के संचालन के लिए चयनित सैद्धांतिक अवधारणाएं दो विपरीत मानदण्डों द्वारा नियंत्रित हैं। इनमें से एक को मैं विश्वसनीयता बुलाऊंगा। विश्वसनीयता के लिए आवश्यक है कि मार्गदर्शक अवधारणा अनिश्चितता व संदिग्धता से मुक्त हो, इसकी शर्तों के निर्देशकों का स्थान व सीमा सुस्पष्ट हो, और यह कि इन निर्देशकों के परिचालन या मापन सूक्ष्म रूप से कर सकते हैं तथा यह परिचालन या मापन एक समान परिणामों के साथ कई बार दोहरा सकते हैं।

फिर भी, यह दूसरे मापदण्ड को जिसे मैं वैधता बुलाऊंगा, यथेष्ट रूप से पूरा नहीं करते। प्रत्येक उदाहरण में उस कमी पर ध्यान दें जो कि पर्याप्त वैधता के अभाव को दर्शाती है। जन्तु व्यवहार को स्वतंत्र रूप से क्रियाशील उद्दीपन के प्रति स्वेच्छित प्रतिक्रियाओं की सूची तक सीमित कर दिया गया है। लेकिन हमारा स्वयं का एवं उच्चतर प्राणियों का ज्ञान इसे पूरी तरह असंभाव्य बना देता है कि किसी प्राणी का व्यवहार उद्दीपन के प्रति अलग एवं स्वतंत्र प्रतिक्रियाओं का संग्रह होगा। यह काफी संभव है कि पूर्व में की गई प्रतिक्रियाएं बाद की प्रतिक्रियाओं में हेर-फेर करें और दो उद्दीपनों के प्रति एक साथ की गई प्रतिक्रियाएं उनके लिए पृथक रूप से की गई प्रतिक्रियाओं का बीजीय योग नहीं हों। सरल एवं स्वतंत्र

विशेषताओं की यह धारणा भी जिसने हमें मानव व्यक्तित्व पर अध्ययन की शुरुआत में समर्थ बनाया, उसी प्रकार संदेहास्पद है। यह पूर्णरूप से अपेक्षित है कि विशेषताएं तनिक भी स्वतंत्र नहीं हैं, उल्टे, एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इसके अलावा, संभवतः विशेषताएं अटल मात्राएं नहीं हों बल्कि हमारे अनुभव की उपज हों जो उनके (अनुभवों) बढ़ने व परिवर्तन होने से बदलती रहती है। वास्तव में, यह संभव हो सकता है कि किसी भी किस्म की

विशेषताओं के अस्तित्व की धारणा का पूर्णतया त्याग करके हम मानव व्यक्तित्व की एक अधिक समृद्ध व सम्पूर्ण समझ प्राप्त कर सकें। उसी प्रकार रासायनिक तत्व एवं यौगिक के अति अपरिष्कृत अवस्था में होने की अवधारणा पर भी हम अधूरी होने का संदेह कर सकते हैं। यह मानती है कि एक यौगिक के गुणधर्मों की उत्पत्ति दो या दो से अधिक तत्वों के मात्र सान्निध्य या संयोग से होती है। किन्तु, कला, वास्तुकला एवं यांत्रिकी में हमारा अनुभव हमें बताता है कि केवल यौगिक के घटक ही नहीं बल्कि इन घटकों का संयोजन भी उसे गुणधर्म आवंटित करने में उतना ही महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में, जो भी आंकड़ा हम काम में लेते हैं वह विश्वसनीय ही नहीं बल्कि प्रातिनिधिक भी हो। वैधता का मानदण्ड यह मांग करता है कि सैद्धांतिक ढांचा जो इन आंकड़ों की खोज के लिए उपयुक्त आंकड़े मानता है उस विषयवस्तु की विविधता एवं जटिलता को अधिकाधिक प्रतिबिंबित करे जिस पर यह लागू किया जाता है।

इन दोनों ही मानदण्डों का अस्तित्व हमारे लिए काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि ये हमें ज्ञान की उन दो विशेषताओं की ओर ले जाते हैं जिनमें पाठ्यक्रम के आवश्यक अर्थ निहित हैं। प्रथम स्थान में, इन दो मानदण्डों का प्रभाव वैज्ञानिक ज्ञान को एक स्पष्ट संशोधनात्मक विशेषता आवंटित करता है, दूसरे स्थान पर, कुछ शास्त्रों में यही पारस्परिक -क्रिया एक ही विषय वस्तु के बहुत से समवर्ती ज्ञान संग्रहों की ओर ले जाता है।

वैज्ञानिक ज्ञान की संशोधनात्मक प्रकृति सैद्धांतिक ढांचे के निरंतर मूल्यांकन एवं परिष्करण से उत्पन्न होती है। जैसे ही एक प्रारंभिक सरल ढांचे के मार्गदर्शन में खोज आगे बढ़ती है, हम अपने

सैद्धांतिक ढांचों एवं ज्ञान संग्रहों की यह बहुलता सामान्यतः सामाजिक शास्त्रों एवं मानव जाति से संबंधित अध्ययनों की स्वाभाविक विशेषता है। आर्थिक ज्ञान के एक से अधिक संग्रह हैं, अलग अलग मानव शास्त्री व समाजशास्त्री अपनी समस्याओं का स्पष्टीकरण विभिन्न नियमों के अन्तर्गत एवं विभिन्न तरीकों से करते हैं। भिन्न भिन्न आलोचक नाटक, कविता, संगीत एवं पेंटिंग के विश्लेषण एवं मूल्यांकन में कला पक्ष के अलग अलग दृष्टिकोणों का प्रयोग करते हैं।

आकड़ों में विषमताएं एवं अपने निष्कर्षों व विषय के आचरण के बीच असंगतियों को ढूंढना आरंभ कर देते हैं। ये विषमतायें एवं असंगतियां हमारी अवधारणा की कमियों को पहचानने में हमें मदद करती हैं। इसी बीच, कम से कम यह सरल ढांचा हमें हमारे विषय की कुछ जानकारी प्राप्त करने और अध्ययन की हमारी प्रणाली को और पक्का करने में हमें समर्थ बना देता है। विषयवस्तु की हमारी नई जानकारी, हमारी परिष्कृत तकनीक, और सैद्धांतिक ढांचे की कमियों की हमारी बढ़ी हुई अभिज्ञा पुराने ढांचों की अपेक्षा, अधिक जटिल विषय वस्तु की विविधता के ज्यादा उपयुक्त नये ढांचों की परिकल्पना करने में हमें सक्षम बनाती है। नये ढांचे के आगमन से पुरानी अवधारणाओं में समाहित ज्ञान, हालांकि अपने परिप्रेक्ष्य में काफी तर्क-संगत होते हुए भी, अप्रयुक्त हो जाता है और पुराने व नये तथ्यों को अधिक प्रबोधक तरीके से एक साथ रखने वाले एक नये सूत्र द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

भौतिकी, रसायन विज्ञान एवं जीव विज्ञान जैसे विषयों में जहां सैद्धांतिक ढांचों का प्रयोग एक के बाद एक होता है वहीं बहुत से ढांचों का समवर्ती प्रयोग कुछ अन्य विषयों की विशेषता है। उदाहरण के तौर पर, मानव व्यक्तित्व के हाल ही के अध्ययन में ज्ञान के दो संग्रहों के बीच मानो प्रतिस्पर्धा थी। एक संग्रह का विकास व्यक्तित्व को मनुष्य शरीर के अनुरूप चिकित्सीय अंगों द्वारा गठित मानकर हुआ था। दूसरे संग्रह का विकास इस अवधारणा पर आधारित था कि व्यक्तित्वों की उत्पत्ति मनुष्यों की एक दूसरे के लिए जरूरतों से हुई है एवं उनका सकारात्मक या नकारात्मक विकास स्वयं के एवं दूसरों के अनुभव से हुआ है। ज्ञान के इस संग्रह के अनुसार व्यक्तित्व की सबसे उत्तम व्याख्या उन विभिन्न संबंधों के संदर्भ में की जाती है जो व्यक्ति दूसरों के साथ स्थापित करता है।

सैद्धांतिक ढांचों एवं ज्ञान संग्रहों की यह बहुलता सामान्यतः सामाजिक शास्त्रों एवं मानव जाति से संबंधित अध्ययनों की स्वाभाविक विशेषता है। आर्थिक ज्ञान के एक से अधिक संग्रह हैं, अलग अलग मानव शास्त्री व समाजशास्त्री अपनी समस्याओं का स्पष्टीकरण विभिन्न नियमों के अन्तर्गत एवं विभिन्न तरीकों से करते हैं। भिन्न भिन्न आलोचक नाटक, कविता, संगीत एवं पेंटिंग के विश्लेषण एवं मूल्यांकन में कला पक्ष के अलग अलग दृष्टिकोणों का प्रयोग करते हैं।

ज्ञान की संशोधनात्मक प्रकृति एवं इसकी बहुलवादी प्रकृति के पाठ्यक्रमीय महत्व अनगिनत हैं जिन्हें यहां पूर्ण रूप से चित्रित करना असंभव है। हमें यहां तीन से ही संतुष्ट होना है।

सबसे पहले, दोनों ही विशेषतायें एक विशुद्ध रूप से कट्टर एवं मन में बैठने वाले पाठ्यक्रम के खतरे की ओर ध्यान दिलाती है। यदि हम किसी क्षेत्र में प्रचलित बहुत सी अवधारणाओं में से किसी एक का कट्टरता पूर्वक चयन कर इसे ही उस विषयवस्तु की सच्चाई के रूप में पढ़ाते हैं तो हम अपने नागरिकों के बीच फूट एवं संवाद की विफलता को जन्म देंगे। विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग पाठ्य व्यवस्थाओं के विद्यार्थी, जिन्हें हमारे राष्ट्र निर्माण में निर्णायक घटनाओं के इतिहास का अध्ययन कट्टरतापूर्वक कराया जाता है, इसका स्पष्ट दृष्टांत हैं। फिर भी, विभिन्न प्रकार की हठधर्मिता के शिकार होने पर यदि हमारे भावी नागरिकों को साहित्य एवं कला के आनंद के हिस्सेदार बनाने से रोका जाये या मनुष्य के कर्मों के मूल या संस्कृति एवं सभ्यता के उदभव के बारे में अलग अलग कट्टर सैद्धांतिक दृष्टिकोणों को हृदयस्थ करने से एक दूसरे को समझने में बाधा आ जाये, तो इससे अधिक विभाजन कारी और कुछ नहीं हो सकता। कट्टरता से दूर रहना ही इसका विकल्प है। अगर हम चाहते हैं तो ज्ञान संग्रहों की बहुलताओं में से एक का चुनाव कर सकते हैं। लेकिन यदि हम ऐसा करते हैं तो इसे इस तरीके से पढ़ाया जाना चाहिये जिससे विद्यार्थी यह सीख सकें कि चयनित ज्ञान संग्रहों को किन सैद्धांतिक ढांचों ने जन्म दिया है, इन ढांचों की क्षमताएं एवं कमजोरियां क्या हैं एवं दूसरे वैकल्पिक ढांचे कौनसे हैं जो ज्ञान के वैकल्पिक संग्रहों को जन्म देते हैं।

ज्ञान की यह संशोधनात्मक प्रकृति पाठ्यक्रमीय महत्व रखती है क्योंकि आज के समय में परिवर्तन इतनी शीघ्रता से होते हैं कि वे हमारे विद्यार्थियों के अध्ययन काल में संभवतः एक बार नहीं बल्कि अनेकों बार घटित होंगे। यदि उन्हें भौतिकी, रसायन शास्त्र एवं जीव विज्ञान का अध्ययन कट्टरता से कराया गया है तो परिवर्तनों की जानकारी उन्हें केवल भ्रम व अलगाव की ओर ही ले जा सकती है। एक बार फिर इसका विकल्प है वैज्ञानिक ज्ञान को उस खोज के संबंध में पढ़ाना जिसने इस ज्ञान को उत्पन्न किया। यदि विद्यार्थी यह खोज लेते हैं कि किस प्रकार ज्ञान का एक संग्रह ज्ञान के दूसरे संग्रह का स्थान लेता है, यदि वे हमारे वर्तमान ज्ञान के मूल में अवस्थित सैद्धांतिक ढांचे के बारे में अवगत हैं, यदि उन्हें सैद्धांतिक ढांचों में भविष्य में होने वाले संभावित परिवर्तनों का अनुमान लगाने की कुछ छूट दी जाती है तो वे भावी परिवर्तनों का न केवल विवेक पूर्वक सामना करने को तैयार रहेंगे बल्कि उस ज्ञान को भी बेहतर तरीके से समझेंगे जो उन्हें वर्तमान में पढ़ाया जा रहा है।◆